रंगमंच एक परिचय–अभिव्यक्ति–संवाद–मनोरंजन

रंगमंच वह स्थान है जहॉ नृत्य, नाटक, खेल आदि का मंचन किया जाता है। रंगमंच 'रंग' और 'मंच' दो शब्दों से मिलकर बना है। दृश्य को आकर्षक बनाने के लिए दीवारों, छतो और पर्दों पर कथानक की विषय वस्तु से संबंधित विविध प्रकार के रंगो एवं चित्रो का प्रयोग किया जाता है। अभिनेताओं की वेशभूषा तथा सज्जा में भी विविध रंगो का प्रयोग होता है। 'मंच' वह स्थान होता हैं जहाँ पर अभिनय किया जाता है। दर्शकों की सुविधा के लिए यह फर्श से ऊँचा रहता है। दर्शकों के बैठने के स्थान को प्रेक्षागार तथा उस समूचे भवन को प्रेक्षागृह, रंगशाला या नाट्यशाला कहते हैं। पश्चिमी देशो में इसे थियेटर या ऑपेरा नाम दिया गया है। भारत में नाट्यकला का विकास ऋगवेद काल में हो गया था। ऋगवेद के कतिपय सूत्रो में यम और यमी, पुरूरवा और उर्वशी आदि के कुछ संवाद है। इन संवादों मे ही विद्धान नाटक के विकास के चिन्ह पाते हैं। अनुमान किया जाता है कि इन्ही संवादो से प्रेरणा ग्रहण कर लोगों ने नाटक की रचना की तथा नाट्यकला का विकास हुआ। रंग–कर्म अथवा नाट्य–कला का स्वरूप आज जैसा भी हो लेकिन इसकी प्रेरणा प्रकृति ने ही दी है। हिलते हुये वृक्षों की गति का अनुकरण, वन्य पशुओं की ध्वनियों से स्वर प्रकृति जन्य है। अनुकरण कला तो सामान्य होती है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति नाट्य कला में पांरगत नही हो सकता । पात्र की सम्पूर्ण विशेषताओं को आत्मसात कर कुशलता पूर्वक उन्हे रंगमंच पर प्रस्तुत करना ही रंगकर्म की विशिष्टता और कुशलता है।

जनमानस पर नाट्यकला का प्रभाव गहरा पडता है। विभिन्न सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान रंगकर्म के माध्यम से सहज ही हो जाते हैं। आदिम रंगकर्मी अपनी रूप सज्जा के लिए हिरमिच एवं अन्य प्राकृतिक रंगो, पुष्पमाला तथा वृक्षों के पत्तों एवं छाल आदि का प्रयोग करता था। जैसे–जैसे मानव सुसंस्कृत होता गया उसकी रंग कला और विकसित होती गई। आज विभिन्न संसाधनो

जैसे ध्वनि, प्रकाश एवं वेशभूषा आदि के प्रयोग से रंग कर्म को यथार्थ रूप देने की कोशिश की जाती है।

नाट्य के आचार्यों ने ''काव्येशु नाटक रम्य'' कहकर नाट के महत्व को स्पष्ट कर दिया है। संगीत और नाटक, मानव के उदात्तीकरण की अद्भुत क्षमता रखते हैं। मानवीय संवेगो को प्रबलता से अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम नाट्यकला है यह एक सर्वसम्मत मनोवैज्ञानिक तथ्य है। एक ओर काव्य, संगीत एवं कथ्य का मिश्रण है तो दूसरी ओर अभिनय, नृत्य एवं अनुकरण का युक्ति संगत संयोजन का नाम है, नाट्य कला। नाटक में सभी नौ रस श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, वीभत्स, अद्भुत, शान्त एवं वात्सल्य की अभिव्यक्ति संभव है। सुप्रसिद्ध नाटककार कोस्तान्तोन स्तानिस्लावस्की के अनुसार किसी भी स्कूल की अपेक्षा रंगमंच (नाट्य–कला) मनुष्य के विकास में अधिक प्रभावशाली सिद्ध होगी, क्यों कि नाट्यकला से मनुष्य का आन्तरिक सौंदर्य तो उजागर होता है साथ ही वह हमारे जीवन के सामाजिक, आर्थिक और बैाद्धिक विकास में उठने वाले उन सभी प्रश्नों का सटीक उत्तरों से समाधान करने की क्षमता रखती है, जिन्हें तर्क बुद्धि नहीं समझा सकती है। उन सभी का स्पष्टीकरण भावनाओ के माध्यम से हमें रंगमंच या नाट्य कला मे सीखने को मिलता है।

सुप्रसिद्ध कवि रविन्द्रनाथ टेगोर ने स्वंय अपनी जीवनी में लिखा है कि उनके परिवार में रंगमंचीय मनोरंजन को प्रमुख स्थान प्राप्त था, और यही कारण रहा कि कवीन्द्र रवीन्द्र एवं उनेक सभी भाई–बहिन अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि एव प्रतिभा के धनी निकले।

प्रमुख नाटकार और उनके नाटक

(क) संस्कृत नाटककार (आरंभिक युग)

1. कालीदास	–	अभिज्ञान शाकुन्तलम्
2. भवभूति	–	उत्तर रामचरित
3. शूद्रक	–	मृच्छकटिकम
4. भास	–	स्वप्नवासवदत्तम्

(ख) हिन्दी (मध्य युग)

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	–	भारत दुर्दशा, सत्य हरिश्चन्द्र
2. जयशंकर प्रसाद	–	चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, राज्यश्री

(आधुनिक युग)

1. मोहन राकेश	–	आधे अधूरे, आषाढ़ का एक दिन
2. हरि कृष्ण प्रेमी	–	राखी की लाज
3. धर्मवीर भारती	–	अंधायुग
4. विष्णु प्रभाकर	–	होरी
5. डा. लक्ष्मीनारायण लाल	–	अंधा कुआँ, दर्पण, मादा कैक्टस
6. सहृदय नाट्याचार्य	–	कर्तव्य पथ

(ग) अन्य भाषाओं के प्रमुख नाटककार

1. शेक्सपियर	–	अंग्रेजी
2. बरतोल ब्रेख्त	–	जर्मनी
3. स्तनिस्लावस्की	–	रूसी
4. विजय तेन्दुलकर	–	मराठी
5. रवीन्द्रनाथ टेगोर	–	बंगला
6. बादल सरकार	–	पंजाबी

आधुनिक हिन्दी रंगमंच

बीसवीं शताब्दी के पाँचवे दशक में भारतीय रंगमंच में गतिशीलता आई। राज्यों और केन्द्र में संगीत नाटक अकादमी, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय तथा इसके अतिरिक्त विभिन्न विश्वविद्यालयों में नाट्य विभागों की स्थापना से इस क्षैत्र में स्वतंत्र नाटककारों निर्देशकों और अभिनेताओं का आगमन हुआ। सत्तर के दशक तक रंगमंच अत्यधिक प्रचलित हुआ लेकिन टेलीविजन के आने के बाद इसकी गति मन्द हो गई । प्रारम्भ में हिन्दी भारतीय रंगमंच की केन्द्रीय भाषा बनी। ये सभी नाटक पश्चिमी बोली मे लिखे गये। रंगमंच मे भारतीयता इसके पांरपरिक जड़ों में खोजी जाने लगी परिणाम स्वरूप नोटंकी (आला अफसर, बकरी, हरीशचन्द्र की लडाई) तमाशा (धासीराम कोतवाल) नाचा (हबीब तनवीर) बिंदेसिया (अमली, माटी गाड़ी, बिंदेसिया) इत्यादि लोक शैलियों का समावेश होने लगा।

नुक्कड़ नाटक

नब्बे के दशक में हिन्दी रंगमंच में महिला निर्देशकों, जिनमें अनुराधा कपूर, त्रिपुरारी शर्मा, माया राव, अनामिका हक्सर, अमाल अल्लाना, नीलम मान सिंह चौधरी, कीर्ति जैन इत्यादि प्रमुख है। महिला निर्देशकों ने जेंडर के प्रश्नों को अपने नाटकों का आधार बनाया।

अभिव्यक्ति

आचार्य भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में 'नाट्य' शब्द का जो प्रयोग हुआ वह केवल नाटक तक ही सीमित नही है, अपितु रंगमंच, अभिनय, नृत्य, संगीत, वेशभूषा, पात्र एवं दर्शक से भी सम्बद्ध है। उनका मत है कि कोई भी ऐसा ज्ञान नही है, शिल्प नही है, विद्या नही है, कला नही है, कर्म नही है, जो इस नाट्य से सम्बद्ध न हो। नाटक में चित्र संगीत और अनुकरण तीनों का समन्वय रहता है। इस दृष्टि से यह अपने आप में एक अपूर्व कला ही नही, अपितु कला–समुच्चय है। अनुकरण के भी दो प्रकार है– बाह्यानुकरण और आभ्यंतरिक या मनोवैज्ञानिक अनुकरण। बाह्यानुकरण में रूप–सज्जा भाव और भावानुकूल चेष्टाओं का मानसिक अनुकरण साम्मिलित है। इस अनुकरण अथवा अभिनय को दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है:–

1. आहार्य्य अभिनय
2. सात्विक अभिनय

आहार्य्य अभिनय का अर्थ है – वाचिक ओर कायिक अभिनय। इसके अन्तर्गत भाषा, वेषभूशा, मुद्रा और भंगिमा

का अनुकरण सम्बन्धित पात्र के आचरण के समान ही अभिनेता को करने पड़ते हैं तभी उसका अभिनय प्रत्यक्ष हो पाता है। शारीरिक चेष्टा, मुख की भाव–भंगिमा तथा गति की अनुक्रिया ही अभिनेता के अभिनय को जीवन्त बनाती है।

सात्विक अभिनय का अर्थ है– रसानुकूल, मनोवैज्ञानिक संवेगों, के अनुसार अभिनय का प्रस्तुतिकरण। क्रोध, श्रृंगार, करूण, वीभत्स, भय आदि मानसिक संवेगों के अभिनय के लिए अभिनेता को उसी के अनुरूप मानसिक रूप से तैयार रहना होता है। यह सात्विक अभिनय नाट्यकला की श्रेष्ठता और यर्थाथता के लिए अत्यावश्यक है।

कायिक अभिनय

पाश्चात्य अभिनय पद्धति के अन्तर्गत अभिनय के पाँच अंग माने गये हैं :–

1. मुख मुद्रा
2. शरीर मुद्रा
3. गति
4. वेग
5. वाणी

कायिक अभिनय की पूर्ण सफलता एवं सार्थकता के लिए कुछ विषेश बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक होता है

1. विभिन्न प्रकार के शारीरिक अभ्यास एवं योगासन
2. देश कालानुरूप सज्जा एवं वेशभूषा का ज्ञान

कायिक अभिनय की पूर्ण सफलता के लिए शरीर का सुगठित और आकर्षक होना अभिनेता के लिए अत्यावश्यक है। इसके लिए अभिनेता को तैरना, दौडना, प्राणायाम घुडसवारी, कुश्ती, जिमनाष्टिक एवं योगासनों का नियमित अभ्यास आवश्यक है। शरीर को गतिमान तथा मन को शान्त रखने के लिए एक कुशल अभिनेता को इन पर पूरा ध्यान देना आवश्यक होता है।

वाचिक अभिनय, उच्चारण और नाद अभ्यास अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए पात्र को स्वर के आरोह–अवरोह, उच्चारण की शुद्धता, पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग, ध्वनि और नाद का अत्यधिक ध्यान रखना आवश्यक है। यदि अभिनेता कायिक अभिनय में पूर्ण कुशल है परन्तु उसका उच्चारण सुस्पष्ट नही है तो दर्शकों में प्रभाव नही छोड़ पायेगा।

उच्चारण:–

अभिनेता बनने के इच्छुक व्यक्ति का उच्चारण पात्रानुकूल हो तथा नाद–विन्यास प्रभावी होना

चाहिये। इसका अभ्यास अनुकरण एवं वाचन द्वारा किया जा सकता हैं। रेडियो एव दूरदर्शन, नाटक, समाचार एवं अन्य कार्यक्रम सुनकर अपने उच्चारण को प्रभावी बनाने का अभ्यास किया जा सकता है। भाषा–संस्कार के लिए लिंगवाफोन का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है। भाव के अनुकूल भाषा अथवा संवाद के प्रयोग हेतु गीत एवं कविता वाचन का अभ्यास उपयोगी होता है। अट्टहास करना, मंदहास्य करना, नाक से बोलना, हकलाकर बोलना, ग्रामीण लहजे में बोलना, स्थानीय भाषा में बोलना आदि अभिनय की दृष्टि से विभिन्न पात्रों को साकार करने में महत्वपूर्ण है।

नाद–अभ्यास

नाट्य कला में 'नाद' का विशेष महत्व है। नाद का अर्थ है स्वर। स्वरों के उतार चढ़ाव का अभ्यास भाव प्रदर्शन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

अभिनय अथवा अभिव्यक्ति में आशु–अभ्यास

आशु अभ्यास का शाब्दिक अर्थ है– बिना संकेत अथवा पूर्व तैयारी के रचना करने अथवा प्रस्तुत करने का अभ्यास। आशु प्रस्तुति के लिए निम्नलिखित गुणों का अभ्यास करना होता है।

1. कल्पना (Imagination)
2. कथा की व्याख्या (Interpretation)
3. प्रेक्षण (Observation)
4. एकाग्रता (Concentration)
5. स्वांग या अनुकरण (Mime)
6. इच्छा–शक्ति (Will Power)

आशु अभ्यास अभिनय का प्राण तत्व है। कलाकार को अपनी कला में तभी पूर्णता प्राप्त होती है जब वह उपरोक्त सभी गुणों का विकास कर लेता है। सर्वप्रथम आभिनेता या निर्देशक नाटक के मूल भाव (Mood) को पकडता है। नाटक का उद्देश्य क्या है? कथानक किस काल का है? उसका राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक परिवेश क्या है? तथा प्रस्तुति के लिए मंच पर क्या क्या साधन सामग्री उपलब्ध है? अपनी कल्पना शक्ति से वह उस परिवेश और संस्कृति से जुडने, उस काल एवं कथानक के अनुरूप भाषा को हृदयंगम करता हुआ वाचिक अभ्यास करता है। अभिनय में एकाग्रता भी उतनी ही आवश्यक है जितनी की अभिनय के प्रति निष्ठा और तत्परता। एकाग्रता के अभ्यास से वह अपने आप को भूलकर उस पात्र को जीने लगता है। इन सभी गुणों का निर्वाह करने के लिए अभिनेता में इच्छा–शक्ति का होना आवश्यक है। जितनी तीव्र इच्छा–शक्ति होगी उसका आशु अभ्यास उतना ही सरल और शीघ्र होगा।

आशु अभ्यास के सभी तत्वों को हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं। मान लिया कलाकार को अकबर के पात्र की अभिव्यक्ति करनी है। निर्देशक ने आवश्यक निर्देश दिये और शाही वेशभूषा कलाकार के लिए तैयार है किन्तु अभिनय से पहले अपने मन मस्तिष्क में उस ऐतिहासिक परिदृष्य की संयोजना करनी होगी। अकबर की महानता और शहंशाह के गौरव को आत्मसात करना होगा तभी उस कलाकार का आत्मविश्वास बढ़ पायेगा और अभिनय में निखार आयेगा। यद्यपि पटकथा नाटककार द्वारा उसी भाषा में लिखी होगी फिर भी उस भाषा शैली के अभ्यास के बिना प्रदर्शन प्रभावी नहीं हो पायेगा। अपने स्व को भूलकर

उसी प्रकार के हाव भाव तथा चाल ठाल का प्रदर्शन करना होगा। कलाकार को इच्छा शक्ति से अपने आपको शहंशाह अकबर जैसा चरित्र प्रस्तुत करना होगा।

अभिनय और रूपसज्जा

कायिक अभिनय में शरीर संचालन संवाद संप्रेषण के अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु है। यदि कथानक की विषय वस्तु, देश और काल के अनुरूप पात्र की रूप सज्जा और वेशभूषा नही है तो दर्शकों के मन पर छाप नही छोड़ पायेगा। उसका अभिनय हास्यप्रद होकर आलोचना का बिन्दु बन जायेगा।

रूप सज्जा एवं वेशभूषा के लिए कलाकार को पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं भौगोलिक वातावरण का सूक्ष्म ज्ञान होना आवश्यक है। नाटक के काल समय स्थान पात्रों की भाषा, व्यवहार, क्रिया, खान पान, रंगरूप आदि का ध्यान रखे बिना पात्र को पूर्णता देना संभव नही है। रूप सज्जा ही पात्र के चरित्र को स्पष्ट करके उसे जनता के मन मे बसाती है। प्राचीनकाल में अभिनेता के प्रसाधन हेतु विभिन्न अनुलेपनों, आभूषणों, केश विन्यासों उद्वर्तनो, अंगराजों, सुरभि साधनो आदि का प्रयोग किया जाता था। लोक नाटकों के लिये भी विभिन्न प्रकार के रंगो का प्रयोग किया जाता था। वर्तमान युग में जबकि सिनेमा, दूरदर्शन व रंगमंच का पर्याप्त विकास हो रहा है, रूप सज्जा के लिए विभिन्न प्रसाधन सामग्री एवं सहायक उपकरणों का प्रयोग किया जाने लगा है। विभिन्न प्रकार की पोशाक,दाढ़ी मूंछ, विग आदि के अतिरिक्त हेयर–फिक्सर, टीथकलर, जिंक ऑक्साइड स्प्रिट गम, नोज पट्टी, मुर्दासींग, सफेदा व अन्य रंग आई–लाइनर आदि का प्रयोग पात्रों की रूप सज्जा में किया जाने लगा है। इसके अतिरिक्त सज्जा कक्ष (ग्रीन रूम) में कंघा, शीशा, तेल, वेसलीन, ग्लेसरीन, लाली क्रीम–पाउडर, रूई, सुई धागा, प्लास्टर, सेफ्टी पिन, तौलिया, साबुन आदि वस्तुऐं भी हर समय उपलब्ध रहती हैं।

नाट्योपयोगी बाह्य वातावरण के अंग

नाटक की रचना रंगमंच प्रदर्शन के लिए होती है। नाटक की प्रस्तुति में दर्जनों व्यक्तियों वस्तुओं और साधनों की आवश्यकता होती है। नाटक के प्रस्तुतिकरण में दृश्य बंध (दृश्यों को बनाना) प्रकाश योजना, ध्वनि संगीत एवं वेशभूषा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। नाटक के प्रस्तुतिकरण को सार्थक और प्रभावशाली बनाने के लिए मंच पर जिस सामग्री का प्रयोग होता है उसी सामग्री के संकलित रूप को मंच सज्जा कहते हैं मंच सज्जा के प्रमुख उपकरण इस प्रकार हैः–

प्रेक्षागृहः–

रंगमंच के बाह्य उपकरण के रूप में प्रेक्षागृह (प्रदर्शन स्थल) अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। प्रेक्षागृह के अन्दर मंच एवं दर्शकों के बैठने की व्यवस्था होती है। इसको रंग भवन, रंगशाला, रंगमंच एवं थियेटर आदि नामों से भी जाना जाता है।

दृश्य बंधः–

प्रत्येक दृश्य में कथा की विषय वस्तु के अनुरूप दृश्यबंध (सेट) तैयार किये जाते हैं। प्रदर्शन को यथार्थ स्वरूप देने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार के भौतिक उपकरणों, पर्दों आदि का प्रयोग किया जाता है। दृश्य बन्ध को प्रतीकों के माध्यम से भी मंच पर दर्शाया जाता है। यथार्थ उपकरणों के स्थान पर प्रतीक स्वरूप वस्तुऐं मंच पर सज्जित की जाती है।

प्रकाश योजनाः–

नाटक का रंगमंच एक बंद भवन होता है, जिसमें प्राकृतिक प्रकाश नही होता है। पात्रों की भाव भंगिमाओं को प्रभावी बनाने एवं विषय वस्तु से संबंधित सजीव वातावरण बनाने में प्रकाश योजना का अत्यधिक महत्व है। शोक दृश्य के मंचन में प्रकाश का धीमा होकर बुझ जाना, उन्मादक वातावरण के लिए लाल अथवा नीला प्रकाश नाटक को भाव तीव्रता प्रदान करता है। कुछ दृश्य जो प्रत्यक्ष नहीं दिखाये जाते उन्हे पर्दे पर छायाचित्रों में माध्यम से दिखाया जाता है।

ध्वनि और संगीत योजना

नाटकीय कथा की प्रस्तुति को रौचक और सरस बनाने तथा दृश्य में भावोत्पत्ति के लिए ध्वनि और संगीत का प्रयोग किया जाता है। गीत नृत्य एवं विभिन्न भाव दशाओं की प्रस्तुति में संगीत का प्रयोग प्रस्तुति में जान डाल देता है। कलाकार के मनोभावों तथा कथानक को सजीवता प्रदान करने में पार्श्व संगीत की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

वेशभूषा

कथानक के काल एवं परिवेश के अनुरूप पात्रों की वेशभूषा नाटक को जीवन्तता प्रदान करती है। वेशभूषा दर्शको को उस युग में पहुँचा देती है जिस युग की घटनाओं को रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा रहा है। संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रत्येक नाटक का एक दृश्य–परिवेश होता है जिसमें नाटककार अपने पात्रों को जीते और कार्य करते हुए देखता और दिखाता है। नाटक के संतुलित और प्रभावोत्पादक वातावरण के रूप में दृश्य सज्जा आधुनिक नाटक का महत्वपूर्ण अंग है।

नाट्यकला के विविध रूप

वर्तमान समय में नाट्य कला के विभिन्न रूप हमारे देश में प्रचलित हैं, उनमें मुख्य है लोक नाट्य, कथकली, नृत्यनाट्यम अथवा बैले संगीत नाट्य या ऑपेरा, पुतली रंगमंच तथा बाल रंगमंच आदि। इन सबका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

लोक नाट्य

लोक नाट्य आदिम अनुकरण की प्राचीनतम अभिव्यंजना है। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि यह आज भी नये निखार के साथ जीवित एवं लोकप्रिय है। प्रादेशिक लोक–नाट्यों की परम्परा को बचाये रखने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर अनेक प्रयास होने लगे हैं। लोक नाट्य आम जन जीवन के उस उन्मुक्त, रसपूर्ण कला वैभव को अभिव्यंजित करते हैं जिनकी नींव पर आज उनका वर्तमान स्वरूप खड़ा है।

लोक शैली में प्रचलित लोक–मन की अनगढ़ व्याख्या अपने आप में अनूठी है। लोक नाटक लोक के आदिम और तदनुकूल आचरणों और विचारों का मंचीय प्रदर्शन है। लोक नाट्य लोक संस्कृति का उद्घाटक है। नाट्य शास्त्र के अनुसार लोक वृत का अनुकरण ही लोक नाटक है। विभिन्न अवतारों, लोक मान्यताओं,

लोक–रीतियों का लोक नाट्यो में खुलकर प्रयोग हुआ है। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त के शब्दों में–

रहता प्रपूर्ण है हमारा रंगमंच भी।
रूकता नही है कभी लोक नाट्य रंच भी।।

लोक नाटकों में नृत्य एंव गीत का बाहुल्य रहता है। गावों के बाहर ऊँचा मंच बनाकर प्रायः देर रात तक इनका मंचन किया जाता है। पांरपरिक रूप से भारत के प्रचलित प्रमुख लोक–नाटक इस प्रकार है–

प्रांत	**लोक नाटक**
राजस्थान	ख्याल
उत्तर प्रदेश	नौंटकी, स्वांग
गुजरात	भवाई
कश्मीर	जश्न
बंगाल	जात्रा
मध्यप्रदेश	माच
महाराष्ट्र	तमाशा
असम	अंकिया नाट
कर्नाटक	यक्ष–गान
बिहार	बिन्देसिया
केरल	कथकली

राजस्थान की लोक नाट्य परम्परा 'ख्याल' के नाम से जानी जाती है इसमें स्त्री पात्रों का अभिनय पुरूष ही करते है। करौली के तुर्रा–किलंगी, मारवाड़ी, शेखावटी के ख्याल प्रसिद्ध है। कुछ लोक नाट्य एवं ख्याल ऐसे भी होते हैं जिनमे संगीत और नृत्य का बाहुल्य होता है। जिनमे प्रमुख है बीछूड़ा, लोहड़ी–बड़ी, सूरदास, फूंदी नृत्य नाट्य, पणधट पंतंग, मयूर, खंग, कच्छी घोडी, घूमर, पूंगी, संयोग–वियोग गींदड़, बोरा–बोरी, रासधारी न्हाण, भांकरिया, डोकरी, बाघाजी, ढ़ोला–मरवण, गौरी इत्यादि।

राजस्थान के ख़्यालो में संवाद भी अधिकतम गेय ही होते हैं, जिनमें लावनी, सोरठ, दोहा, चौपाई साखियाँ शेर और चौबालों का प्रयोग किया जाता है। वाद्य यंत्रो में नगाड़ा नगाड़ी सांरगी, मंजीरा, ढफ, आदि लोक वाद्यों का प्रयोग होता है। कथकली केरल का एक क्षेत्रीय लोकनाट्य रूप है, जिसे नृत्य नाटक कहना अधिक समीचीन होगा। कथकली भाव भंगिमाओ (मुद्राओं) और संकेतो के आधार पर चलने वाला नृत्य नाट्य है। इसमें विभिन्न प्रकार के मुखौटों का प्रयोग होता है। आजकल यह शास्त्रीय नृत्यों की श्रेणी में माना जाने लगा है।

कठपुतली–

विश्व के सबसे प्राचीनतम् नाट्य का सर्वप्रिय और अनोखा रूप है– पुतलियों का तमाशा। यदि एक जीवित अभिनेता मंच पर आकर अभिनय करता है, सवांद प्रेषण करता है तो कोई अद्भुत बात नही लेकिन जब यही

कार्य सूत्रधार के सूत्र पर आधारित काष्ठ–पुतली करे तो अवश्य ही आश्चर्य की बात है। कठपुतली अभिनय कला के सरंक्षण एवं संवर्धन का कार्य भारतीय लोक कला मण्डल उदयपुर मे हो रहा है।

नृत्य नाट्य अथवा बेले– नृत्य नाट्य भावों का अविभाज्य अंग है। लास्य अर्थात श्रृंगार युक्त भावों की प्रणेता पार्वती और पुरूष–भाव युक्त नृत्य ताण्डव के प्रणेता शंकर को माना गया है। नृत्य नाट्य में सम्पूर्ण कथा का अभिमंचन केवल नृत्य बोली के माध्यम से किया जाता है। पार्श्व–गीत और संगीत के आधार पर नर्तक अपनी अभिव्यक्ति विभिन्न नृत्य मुद्राओं, मूक भावों और पाद संचलन द्वारा करता है। प्रसिद्ध नर्तक उदय शंकर और उनकी पत्नी अमला शंकर आधुनिक नृत्य नाट्य के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। भारतीय कला मण्डल दिल्ली इसके संरक्षण और संवर्धन का कार्य कर रहे हैं।

संगीत–नाट्य या ऑपेरा

नाट्य रूपों का यह प्रकार यद्यपि हमारे प्राचीन नाटकों में भी देखने को मिलता है किन्तु तब अभिनय, संगीत और नृत्य एक साथ ही संयोजित रहते थे। कुछ वर्षों में संगीत नाट्य या ऑपेरा पश्चिम के प्रभाव वश एक अलग रंगमंच के रूप मे अवतीर्ण हुआ है। इस कला में भावों की अभिव्यक्ति केवल संगीत के आरोह–अवरोह के माध्यम से ही होती है। स्वर–ध्वनियां ही उभर–उभर कर पात्रों का भावाभिव्यंजन करती है। बालं रंगमंच– जैसा कि इसके नाम से ज्ञात होता है कि यह बच्चों के लिए होता है। प्रारम्भ में एक बाल रंगमंच चिल्ड्रन लिटिल थियेटर के नाम से कलकत्ता में बना। अब दिल्ली व कुछ अन्य स्थानों पर इसकी शाखायें हैं। इसका उद्देश्य छोटे बच्चों को स्वर लय, गति, रंग और संवाद के माध्यम से उनमें कलात्मक अभिरूचि विकसित करना है।

रंगमंच एक परिचय

महत्वपूर्ण बिन्दुः–

1. दर्शकों के बैठने के स्थान को प्रेक्षागार तथा उस समूचे भवन को प्रेक्षागृह, रंगशाला या नाट्यशाला कहते हैं। पश्चिमी देशों में इसे थियेटर या ऑपेरा नाम दिया गया है।
2. एक ओर काव्य संगीत एवं कथ्य का मिश्रण हैं तो दूसरी और नृत्य एवं अनुकरण का युक्ति संगत संयोजन का नाम है, नाट्य कला।
3. नाटक मे सभी नौ रस–श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, वीभत्स, अद्भुत, शान्त एवं वात्सल्य की अभिव्यक्ति सभंव है।
4. अनुकरण अथवा अभिनय को दो रूपों मे विभाजित किया जा सकता हैः–
   (1) आहार्य्य अभिनय (2) सात्विक अभिनय
5. सशक्त अभिनय हेतु कल्पना, कथा की व्याख्या, प्रेक्षण, एकाग्रता, अनुकरण तथा इच्छा भक्ति के गुणों का विकास करना होता है।
6. नाट्य कला के विभिन्न रूप हमारे देश में प्रचलित हैं, उनमें मुख्य हैः–
   लोकनाट्य, कथकलि, नृत्यनाट्यम् अथवा बेले संगीत नाट्य या ऑपेरा, पुतली रंगमंच तथा बाल रंगमच आदि ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्नः–

1. रंगमंच को निम्न में से किस नाम से भी जाना जाता है–
   (अ) प्रेक्षागृह (ब) रंगशाला (स) नाट्यशाला (द) उपर्युक्त सभी
2. नाट्यकला में कितने रसों की अभिव्यक्ति संभव हैः–
   (अ) आठ (ब) सात (स) नौ (द) चार
3. 'मृच्छकटिकम्' नाटक के लेखक हैंः–
   (अ) कालीदास (ब) जयशंकर प्रसाद (स) शूद्रक (द) भवभूति
4. बंगला भाषा के नाटककार निम्न में से कौन हैः–
   (अ) बादल सरकार (ब) रविन्द्र नाथ टैगोर (स) विजय तेन्दुलकर (द) उपर्युक्त सभी
5. पाश्चात्य अभिनय पद्धति के अन्तर्गत अभिनय के कितने अंग माने गये हैंः–
   (अ) चार (ब) पांच (स) छः (द) सात
6. निम्नलिखित को सुमेलित करिये :–
   (अ) राजस्थान – जश्न
   (ब) कश्मीर – ख्याल
   (स) मध्यप्रदेश – अंकिया नाट
   (द) असम – माच
7. निम्नलिखित को सुमेलित करिये :–
   (अ) कथकली – गुजरात
   (ब) बिन्देसिया – बंगाल
   (स) जात्रा – केरल
   (द) भवाई – बिहार
8. भारतीय लोक कला मण्डल राजस्थान में कहाँ स्थित हैः–
   (अ) जयपुर (ब) उदयपुर (स) बीकानेर (द) अजमेर
9. तुर्रा–किलंगी लोक नाट्य राजस्थान के किस जिले से संबधित हैः–
   (अ) करौली (ब) सवाई माधोपुर (स) ब्यावर (द) चित्तौडगढ़
10. भारतीय लोक कला मण्डल कहाँ स्थित हैः–
   (अ) पुणे (ब) जयपुर (स) दिल्ली (द) चंडीगढ़

अतिलधुरात्मक प्रश्नः–

1. दर्शकों के बैठने के स्थान को क्या कहते है?
2. 'उत्तर रामचरित' नामक संस्कृत नाटक के लेखक का नाम लिखिये।
3. राजस्थान संगीत नाटक अकादमी कहाँ स्थित है।
4. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय कहाँ स्थित है।
5. नाटक में अनुकरण के रूप बताइये।
6. नाटक में संवाद को प्रभावशाली बनाने के लिए कौनसा गुण आवश्यक है?
7. रूप सज्जा में किस सामग्री का प्रयोग किया जाता है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. रंगमंच को परिभाषित कीजिये।
2. नौ रसों के नाम लिखिये।
3. पाश्चात्य अभिनय पद्धति के पाँच अंग बताइये।
4. भाषा संस्कार के लिए किस उपकरण का प्रयोग किया जाता है।
5. आशु–प्रस्तुति के लिए किन गुणों का अभ्यास करना होता है।
6. लोक नाट्यो की विशेषता बताइये।

निबंधात्मक प्रश्न

1. आधुनिक हिन्दी रंगमंच को विस्तार से समझाइये।
2. अभिनय के दो रूपों को विस्तार से समझाइये।
3. नाट्योपयोगी बाहय वातावरण के अंगो को विस्तार से लिखिये।

उत्तरमाला (बहुचयनात्मक प्रश्न)

1. द 2. स 3. स 4. ब 5. ब
6. अ–2, ब–1, स–4, द–3
7. अ–3, ब–4, स–2, द–1
8. ब 9. अ